ग्राम पंचायतों की कार्य प्रणाली : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

डॉ0 उमाशंकर सिंह*

उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक नई ग्रामीण राजनीतिक व्यवस्था का श्रीगणेश हुआ। सत्ता को सबसे निचले स्तर तक पहुँचाने और प्रशासन तथा विकास में जनता की भागीदारी के स्वप्न को वास्तविक रूप में परिणित करने के प्रयास में प्रदेश सरकार द्वारा त्रिस्तरीय पंचायतों को वित्तीय और प्रशासनिक अधिकारों का प्रतिनिधायन करते हुए प्रदेश के समन्वित विकास मे उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कुछ विशेष कदम उठाए गयें।[1] यहाँ देश में सबसे पहले 7 दिसम्बर 1947 को यू.पी. पंचायत राज एक्ट 1947 पास हुआ जिसके फलस्वरूप चुनी हुई पंचायतों ने 15 अगस्त 1949 से कार्य प्रारम्भ किया। प्रदेश में पंचायतों के आधार को और विस्तृत करने के उद्देश्य से बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के अनुरूप इन्हें त्रिस्तरीय स्वरूप प्रदान करने हेतु वर्ष 1961 मे उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति एवं परिषद जिला परिषद अधिनियम, 1961 पारित किया गया।

वर्ष 1988 से पूरे देश में पंचायती राज व्यवस्था को नया स्वरूप प्रदान करने के प्रयास शुरू किये गयें और वास्तविक अर्थो में विकास में जनता की सहभागिता बढ़ाने हेतु अप्रैल 1993 में लागू हुए 73वें संविधान संशोधन के प्रावधानों और उनकी भावनाओं के अनुरूप 13 अप्रैल 1994 को प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था से सम्बंधित दोनों अधिनियमों में आवश्यक संशोधन किये गयें, इसे उ.प्र.पंचायत विधि (संशोधित) अधिनियम 1994 कहा गया। और इसमें पंचायतों के कार्यकाल कों पाँच वर्ष का निर्धारण, अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्गो तथा महिलाओं के लिए पंचायतों के सभी स्तरों पर आरक्षण की व्यवस्था, प्रत्येक पंचायत के लिए एक कोष की स्थापना, राज्य निर्वाचन और वित्त आयोग का गठन और पंचायतों के कार्यो, दायित्वों तथा अधिकारों का निर्धारण किया गया। इन प्रावधानों को क्रियान्वित करने हेतु प्रदेश में 1995–96 में पंचायतों का पुर्नगठन किया गया।[2] जिसके तहत उत्तर प्रदेश चुनाव आयोग द्वारा वर्ष 1996 से लेकर 2005 तक पंचायतों के तीन आम चुनाव सम्पन्न कराये जा चुके है।

ग्रामीण समाज में गरीबी बहुत आधिक है, बड़े पैमाने पर बेरोजगारी है और अनेक लोगों के पास अपनी पूरी क्षमता और जरूरत का रोजगार नही है। आधुनिकीकरण की प्रक्रियां धीरे–धीरे फैल रही है लेकिन गांवों का जीवन काफी हद तक परम्परागत ही है। अब भी उपलब्ध संसाधनों के ज्यादा हिस्सें पर समाज के गिने–चुने संभ्रान्त लोगों का कब्जा है। गांवों में सामाजिक व्यवस्थाओं, जातियों के अपसी सम्बन्धों, जमींदार और आसामी के सम्बंधों और विभिन्न सांस्कृतिक रस्मों में अनेक पिछड़ी बातें है। ऐसे ही अन्य कारणों की वजह से समाज में विभिन्न वर्गो को मिलने वाले लाभों का बँटवारा गलत हुआ है और ग्रामीण इलाकों का असमान विकास हुआ है। इन सब बातों को देखते हुए पंचायती राज के जरिये आम जनता की भागीदारी हुत जरूरी है ताकि समाज की ये विषमताएँ एथा गड़बड़ियाँ दूर हो सकें। विकास कार्यो में आम लोगों की भागीदारी की नीति को हमने स्वीकार किया है और पंचायती राज प्रणाली को फिर सक्रिय बनाकर सत्ता का विकेन्द्रीकरण इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन दुर्भाग्य से वास्तव में यह प्रयास सफल नही रहा है।[3]

पंचायतों को प्रभावी बनाने की दृष्टि से संविधान में संशोधन किया गया। विगत दस वर्ष पूर्व नयी पंचायतें गठित की गयी किन्तु उनकी कार्य प्रणाली से प्राप्त अनुभव से स्पष्ट है कि ग्राम प्रधान को ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत की बैठक अवांछित अतिक्रमण की तरह लग रही है। राज्य सरकार ने यह निर्देश दिये है कि प्रत्येक माह के दूसरे बुद्धवार को ग्राम पंचायत की बैठक आयोजित की जायेगी, लेकिन अधिकांश ग्राम पंचायतों में बैठके आयोजित ही नहीं की जाती बल्कि ग्राम प्रधान द्वारा सचिव के मिलीभगत से बैठक कार्यवाही की खानापूर्ति करके ग्राम पंचायत सदस्यों का हस्ताक्षर करा लिया जाता है। अपवाद स्वरूप कुछ ग्राम पंचायतों को छोड़कर कहीं बैठके आयोजित भी होती है तो सिर्फ कोरम पूर्ति एवं ग्राम पंचायत सदस्यों से हस्ताक्षर कराने के लिए ही। यही स्थिति ग्राम सभा के बैठक में भी

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बनस्थली पी.जी.कालेज, अहरौरा, मीरजापुर**

देखने को मिलती है कि ग्राम सभा की बैठक समय से नही बुलीई जाती या बुलाई भी जाती है तो उसमें कम से कम लोग भाग लेते है और ग्राम सभा के सामने सारे तथ्य एवं आँकड़े नहीं रखे जाते है। ग्रामीणों का आरोप है कि ग्राम प्रधान द्वारा ग्राम सभा की खुली बैठक न बुलाकर सारी योजनाओं का क्रियान्वयन स्वयं किया जाता है, जिससे पात्र लोगों को योजनाओं का लाभ नहीं मिल जा रहा है। इस सम्बंध में पूछने पर प्रधान का सीधा जबाव होता है कि जब सारे विकास कार्य हो रहे है तो खुली बैठक की कोई आवश्यकता नहीं है। ग्राम पंचायत विकास अधिकारी (सचिव) इस बारे में कुछ भी कहने को तैयार नही है। ग्राम सभा की खुली बैठक न होने से लोगों को एक तरफ जहाँ योजनाओं का लाभ नही मिल पा रहा है, वहीं ग्राम प्रधान अन्नपूर्णा योजना, अन्त्योदय योजना, इन्दिरा आवास योजना व अन्य योजनाओं में भारी धाँधली करके इसका लाभ सिर्फ अपने चहेतों को दिला रहें है। इसके अलावा विकलांग, बृद्धा व विधवा पेंशन आदि में भी धाँधली बरती जा रही है। कहीं–कहीं प्रधान जी गरीबों से , योजनाओं का लाभ देने लिए, अधिकारी को सेवा शुल्क (घुस) देने की बात करके, धन भी वसूली कर लेते है।

पंचायती राज के जरिये विकेन्द्रीकरण को स्थानिय स्वायत्त शासन की प्रक्रिया का अंग माना गया था ताकि जहाँ विकास कार्य हो रहा है, वहाँ के लोगों को फैसले लेने का मौका मिले। लेकिन नौकरशाही के काम करने के तरीकों और आम लोगों के साथ अधिकार बाँटने में समाज के ताकतवर लोगों की अनिच्छा की वजह से विकेन्द्रीकरण निष्प्रभावी हो गया।

पंचायती राज का विचार मूलतः इस सिद्धान्त पर आधारित है कि लोगों को अपने मामले का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी सौंपी जाए, क्योंकि यह लोगों को ही मालूम होता है कि उनकी समस्याएँ क्या है? उनकी प्राथमिकता क्या है? और कैसे उनकी आवश्यकताओं को सर्वोत्तम तरीके से पूरा किया जा सकता है? किन्तु शनैः–शनैः समाज के अन्य क्षेत्रों में अयी गिरावट के साथ–साथ पंचायतों में ग्राम स्तर पर, निर्णय लेने की प्रक्रिया की लोकतांत्रिक पद्धति में, लोगों की सहभागिता के अभाव के कारण, विकेन्द्रीकरण का प्रयास असफल होता नजर आ रहा है, क्योंकि कुछ चुने हुए लोग, क्षेत्र या परिवार ही विभिन्न विकास कार्यक्रमों का लाभ समेट लेते है और गाँव का गरीब व्यक्ति की मुख्य धारा से कटा का कटा रह जाता है। इसका एक कारण जहाँ विकास कार्यक्रमों की सही जानकारी का अभाव, वहीं शासन की सीमित वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने की विवशता, स्थानीय संसाधनों का पूर्ण व सही दोहन न होना, तकनीकी जानकारी व निर्णय लेने की प्रक्रिया में आम आदमी की सहभागिता का अभाव भी है।[5]

ग्राम पंचायतों के कार्यो के सम्बन्ध में ग्राम सभा को जानकारी नहीं हो पाती है। उदाहरण के लिए गाँव के विकास के लिए कौन सी योजनाएँ लागू है किन याजनाओं का प्रस्ताव है, पंचायत की बैठक कब और कहाँ होगी, ढेर सारे मसले ळै जो गाँव वालों के मन मे उठते रहते है। किन्तु हमेशा की तरह अनुत्तरित रह जाते है।[6] कारण है भय, दबाव व स्वार्थवश वे इन उत्तरों का साहस ही नहीं बटोर पाते, ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत के काम–काज के बारे में अधिकांश लोगों एवं पंचायत सदस्यों को जानकारी नहीं है ताकि वह अपने अधिकारों का उचित प्रयोग कर सकें। जो लोग कोशिश करते भी है उन्हें सूचना नहीं मिल पाती। ऐसी स्थिति में जब ग्रामीण इन बातों से अंजान है तो क्या सफल योजनाओं की आशा की जा सकती है? पंचायती राज अधिनियम को लेकर सरकार द्वारा जो संशोधन किये गये ताकि अधिकारी व कर्मचारियों को सूचना गाँव वालों तक पहुँचने के लिए जबावदेह बनाया जा सके। अनुपालन न करने पर उनके खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की बात की गयी, क्या यह सब कहीं देखने को मिला?[7]

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 1999 में ग्राम पंचायत के बैठक की मनमानी कार्य विधियों को महसूस करते हुए एवं विकास कार्यो में मनमानी पर रोक लगाने के लिए, यह कदम उठाया गया था कि प्रधान पद के लिए निकटतम् हारे प्रत्याशी को बैठकों में भाग लेने का अधिकार होगा तथा वह एक सदस्य के रूप में माना जायेगा। परन्तु ग्राम प्रधानों ने मिलकर इस प्रस्ताव का पुरजोर विरोध किया गया, उनका कहना था कि गलत कार्यो के लिए हारे हुए प्रत्याशी विरोध स्वरूप बोलते है। सरकार ने ग्राम प्रधानों की बात का समर्थन करते हुए अपने इस प्रस्ताव को वापस ले लिया और इसके स्थारन पर कार्यो में पारदर्शिता लाने के लिए यह व्यवस्था की गयी कि प्रत्येक ग्रामवासी नाम मात्र का शुल्क जमा

करके ग्राम पंचायत के किसी भी अभिलेख की प्राप्ति कर सकता है।[8] सूचना का अधिकार निश्चित रूप से ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा के प्रति जबावदेही बनायेगा किन्तु अन्य अधिकरों की भाँति यह अधिकार भी क्या कागजों तक सीमित नहीं रहा? इसके लिए ग्रामवासियों को जागरूक करना होगा। ग्राम सभा जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की आधारभूत इकाई मानी यही है। यदि यह इकाई सदैव सक्रिय एवं गतिशील रही तो हमारें समाज का भविष्य सशक्त होगा ऐसा विश्वास है। किन्तु इस क्रम में गठित ग्राम पंचायतों की गतिविधियाँ निराशाजनक रही है।[9]

हमारें प्रदेश में एक नयी अवधारणा भी इधर विकसित हुई है–शायद अन्य हिन्दी भाषी प्रदेशों में भी यह हो। यहाँ पंचायत का तात्पर्य मात्र प्रधान ही होकर रह गया है। यदि गाँव चले जाये और किसी कार्य के लिए जानना चाहे कि यह किसने कराया है? (और यह कार्य यदि ग्राम पंचायत द्वारा किया गया है) तो निश्चित रूप से एक ही उत्तर मिलेगा कि प्रधान ने कराया है। आप शायद ही कहीं सुने कि यह कार्य पंचायत ने कराया है। हमारे यहाँ पंचायत का मतलब प्रधान तक सीमित होकर रह गया है और अधिकारी वर्ग भी पंचायत के सामूहिक प्रस्ताव के स्थान पर प्रधान के हस्ताक्षर व मोहर को ही महत्व देता है। जहाँ पंचायत का प्रस्ताव कानूनतः जरूरी है तो वहाँ फर्जी प्रस्ताव लिखकर प्रधान व सचिव हस्ताक्षर कर लेते है।[10] कुल मिलाकर जन सहभागिता का आज भी अभाव है और शासकीय कर्मी के समानान्तर निर्वाचित प्रतिनिधियों की एक जमात आम जनता के सामने आ खड़ी हुई है जिसे जनता का सामना करने का डर तो है ही नहीं, अपितु शासनतंत्र से भी वह बेखौफ है। अपवादों की बातें एवं प्रधान को पद प्राप्त करने में सहायक लोगों को छोड़कर आम लोगों के लिए प्रधान इतना ही अजूबा है जितना की शासकीय कर्मी, उतना ही और निरंकुश, पक्षपाती, आलसी व भ्रष्ट जितना कि शासनतंत्र। प्रधानों के अशिक्षित, अनुभवहीन होने का जो फायदा ग्राम स्तरीय कर्मियों ने उठाया है, वही फायदा आम जनता की गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता का प्रधान ने उठाया है, और शासकीय कर्मी से गठजोड़ कर सामुदयिक विकास के कार्यक्रमों के धन का सदुपयोग नहीं होने दिया है। पंचायत प्रतिनिधियों के प्रति अविश्वास प्रस्ताव लाने की जटिल प्रक्रियां ने जहाँ उन्हें दबाव रहित होकर कार्य करने को प्रोत्साहित किया है, वहीं अधिकांश को निरंकुश भी बनाया है।[11]

नवीन पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक न्याय, सामाजिक सद्भाव एवं ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना एक चुनौती पूर्ण कार्य है। विशेषकर उस दशा में जब ग्रामीण जनता गरीबी एवं बेरोजगारी की शिकार है। ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ हद तक आज भी सामन्तशाही एवं दबंग लोगों का आधिपत्य है। पंचायती चुनाव धन, बल, छल के आधार पर लड़ा जा रहा है। जिनमें जातिवाद एवं गुटवाद अपने चरम बिन्दू पर है। किसी भी प्रकार पंचायती चुनाव में जीत प्राप्ति हेतु प्रत्याशी अधिकतर मतदाताओं से जाति, गुट, धन या भेंट देकर अपने पक्ष में मत का प्रयोंग कर करे है। ग्रामीण राजनीति में भ्रष्टाचार एवं अपराधीकरण प्रवेश कर चुका है। पंचायती राज के तहत हुए विकेन्द्रीकरण के बावजूद निचले स्तर पर भ्रष्टाचार कम नहीं हुआ है। कहा जा रहा है पंचायती राज व्यवस्था ने भ्रष्टाचार का विकेन्द्रीकरण कर दिया है। सत्ता में स्थायित्व एवं चुनाव के दौरान व्यय किये गयें धन की पुनः प्राप्ति की इच्छा से पंचायत जन–प्रतिनिधि भ्रष्टतंत्र के प्रति समर्पण भाव अपनाये हुए है। यदि भ्रष्टाचार के दानव पर नियंत्रण नहीं किया गया तो न केवल इस योजना को विफल बना देगा, बल्कि भविष्य में इस तरह की महत्वाकांक्षी योजना को शुरू करने की सम्भावना समाप्त कर देगा।[12]

नयी पंचायती राज व्यवस्था के फलस्वरूप कमजोर वर्ग के लोग गांवों का नेतृत्व करने के लिए आगे आयें है। महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। लेकिन कहीं–कहीं यह देखने में आया है कि ग्राम पंचायत का चक्रानुक्रम आरक्षण द्वारा जब अनुसूचित जाति, जनजाति अथवा महिलाओं के लिए स्थान सुरक्षित हो जात है तो उच्च जाति के नेता अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए आज्ञा मानने वाले अनुसूचित जाति, जनजाति अथवा महिला वर्ग के सदस्य को प्रत्याशी बनाते है ताकि वे उनके इशारे पर चलें। क्योंकि ऐसे प्रत्याशी कम पढ़े लिखे होते है एवं आर्थिक दृष्ट्रि से पूर्णतः उन पर आश्रित भी होते है। कहीं–कहीं कमजोर वर्गो में उभरते नेतृत्व को अपने साथ ने लिया जाता है। उन्हें लाभ के कुछ टुकड़े दे दिये जाते है जिससे वे पहले से चल रही व्यवस्था के विरूद्ध न जाएं। जन प्रतिनिधि बनकर उभरे हर व्यक्ति को चूँकिं ताकत का लाभ मिलने लगता है, इसलिए पुरानी लचर व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं

आ पाता है। हर गाँव के वर्ग में क्रीमीलेयर तैयार हो चुका है। बहुत हद तक कमजोर वर्ग के लोग स्वयं अपनी बदहाली के लिए जिम्मेदार होते है। व्यवस्था में हो रही गड़बड़ी का उन्हें पता होता है, तब भी वे आवाज उठाना नहीं चाहते है। छोटे–छोटे स्वार्थो के सधते ही प्रसन्न हो जाते है यह अल्पदर्शिता ही उन्हें उदासीन बना देती है। वे कहते है कि छोड़ों भाई, कौन झंझट में पड़े। यहीं अल्पदर्शी दृष्ट्रिकोण आम आदमी को कमजोर बना देता है।

आरक्षण की बाध्यता के कारण महिलाएं अपने लिए निर्धारित स्थानों को प्राप्त करने की अधिकारी अवश्य बन गई है किन्तु उनकी अधिकार विहीनता की स्थिति यथावत् बनी हुई है।[13] पुरूषोचित अहम् की प्रधानता के कारण पंचायती राज की महिला जनप्रतिनिधि अभी भी एक कठपुतली मात्र है और निर्णय प्रक्रियाओं का वास्तविक प्रवन्धन परिवार के पुरूषों के हाथ में ही है। महिलाओं के नेतृत्व की आड़ में चुनाव से लेकर पंचायत प्रक्रियाओं के संचालन तक असली ताकत पुरूषों के हाथों में ही है।[14] क्योंकि नयी व्यवस्था लागू होने के 10 वर्षो बाद भी यही तस्वीर सामने आ रही है। कि वे अधिकांश मामलों में स्वयं कार्य सम्पादित नहीं कर रही है और प्रधानपति या प्रमुखपति ही उनका प्रतिनिधित्व कर रहे है। पुरूष प्रधान समाज में यह बात कोई अस्वाभाविक भी नही है किन्तु महिलाओं की भागीदारी बढ़ानें के लिए संवैधानिक प्रयास को और अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता अवश्य महसूस होने लगी है। कदाचित समय के साथ–साथ अधिक अनुभवी एवं शिक्षित होती महिला प्रतिनिधि अपनी सार्थक भागीदारी निभा सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. अग्रवाल, उमेश चन्द्र : *उत्तर प्रदेश में पंचायती राज : दशा एंव दिशा,* कुरूक्षेत्र, जून2006, पृ.–3।
2. अग्रवाल, उमेश चन्द्र : तदैव, पृ.–3।
3. असलम एस. :*ज्यादा अधिकार दे ग्राम सभाओं को,* कुरूक्षेत्र, अक्टूबर 1999, पृ.–31।
4. अमर उजाला : इलाहाबाद संस्करण, 20 अपैल 2000।
5. चतुर्वेदी, राकेशः *पंचायतों का सशक्तिकरण,* उद्योग नगर प्रकाशन,गाजियावाद, 2003, पृ. 2।
6. सिंह, सिद्ध गोपाल :*पंचायत राज में ग्रामीण जनतंत्र की चुनौतियाँ,* पंचायत वार्ता, अप्रैल–जून, 2004, पृ.–7
7. सिंह, सिद्ध गोपाल : तदैव, पृ.–7।
8. सिंह, नरेन्द्र पाल : *सत्ता का विकेन्द्रीकरण और ग्राम राज की स्थापना,* कुरूक्षेत्र, फरवरी, 2000, पृ.–26।
9. सिंह, सिद्ध गोपाल : तदैव, पृ.–7।
10. चतुर्वेदी, राकेश : उपरोक्त, पृ. 114–115।
11. चतुर्वेदी, राकेश : तदैव, पृ.–115।
12. सिंह, सूर्यभान : *ग्रामीण विकास और पंचायती राज,* कुरूक्षेत्र, नवम्बर 2005, पृ. 30।
13. अमर उजाला : *हमारी ग्राम पंचायतों का सरकारी ठेकेदार बनाना,* इलहावाद संस्करण, 18 फरवरी, 2003।
14. अग्रवाल नीलिमा : *राजस्थान में महिला पंचायती राज : दशा एवं दिशा,* कुरूक्षेत्र, नवम्बर 2005, पृ. 20।
15. अग्रवाल, नीलिमा : तदैव, पृ. 20।